Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 SHISRRJ | Volume 4 | Issue 5 | ISSN : 2581- 6306

बौद्ध काल में ब्राह्मणों का नैतिक पतन

डॉ0 अभिजात ओझा
असिस्टेंट प्रोफेसर,
प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,
नेहरु ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय,
प्रयागराज, उत्तर प्रदेश,भारत।

Article Info
Volume 4, Issue 5
Page Number : 10-15

Publication Issue :
September-October-2021

Article History
Accepted : 01 Sep 2021
Published : 08 Sep 2021

सारांश – भयपूर्ण वातावरण में बुद्ध ने ऐसी विचारधारा प्रस्तुत की जो जनसाधारण को मनोवैज्ञानिक शांति पहुँचा सके। बुद्ध इस प्रकार की दशा के कारणों की खोज में न पड़कर लोगों के सांसारिक (भौतिक) दुःख की जगह सार्वभौम दुःख के ज्ञान द्वारा उन्हें आदर्श समाधान दिया। ट्रेवर लिंग के अनुसार इस क्षेत्र में कृषि के विकास ने अत्यधिक सघन आबादी एवं नगरीकरण को जन्म दिया और बदले में नगरीकरण ने सामाजिक स्तर पर व्यक्तिवाद को तथा राजनीतिक स्तर पर निरंकुश राजतंत्र को जन्म दिया। व्यक्तिवाद एवं राजतंत्र के विकास ने व्यक्ति की नैतिक एवं आध्यात्मिक सोच को अस्त–व्यस्त कर डाला। इस दुविधा ने मानवीय परिस्थितियों के प्रति असंतोष पैदा किया और बुद्ध के लिए व्यक्तिगत दुखों की यह बात ही उनके मानवीय दशा के विष्लेषण का आरंभिक बिंदु बनी।

मुख्य शब्द – बौद्ध, काल, ब्राह्मण, नैतिक, पतन, जनसाधारण, मनोवैज्ञानिक, वातावरण, व्यक्तिवाद।

ब्राह्मण देश के व्यवस्थाकार थे। उनके द्वारा निर्मित विधि–निषेधों से ही समाज का संचालन हो रहा था। अपनी विद्वत्ता, उदारता और साधनाशील जीवन प्रणाली के कारण उन्हें समाज में मूर्धन्य स्थान मिला था। उसके साथ–साथ उन्हें अनेकानेक विशेषाधिकार और सुविधायें भी प्राप्त थीं। परंतु छठीं शताब्दी तक आते–आते हम देखते हैं कि उनका घोर नैतिक पतन हो जाता है। वे

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

अपने साधनामय जीवन से विमुख होकर बहुमुखी सांसारिकता में प्रवृत्त होते हैं। बौद्ध और जैन साहित्य में वे 'अपेता' 'पथ भ्रष्ट' और 'धिक् जाति' कहे गए हैं।

ब्राह्मण व्यवस्था के विरुद्ध एक ओर तो व्यवसायानुसरण के संबंध में निर्मित उसके विधि–निषेधों के प्रति आर्थिक असंतोष था और दूसरी ओर उसके अपव्ययात्मक यज्ञों के प्रति भी। इहलोक और परलोक में परम कल्याण के लिए यज्ञयागादि आवश्यक समझे जाते थे। परंतु ये यज्ञ मनुष्य तब ही कर सकता था जब उसके पास उनके लिए विषेश ज्ञान हो। यह विशेष ज्ञान पुरोहित वर्ग में ही सन्निहित था। अतः यज्ञ कराने के लिए पुरोहित की आवश्यकता थी और पुरोहित भी सदैव एक दो नहीं वरन् अनेक, कभी–कभी तो सत्रह–सत्रह। फिर यज्ञ भी बहुधा दीर्घकालीन होते थे। इन सब बातों के कारण यज्ञ अत्यंत अपव्ययात्मक हो गए थे और उनका कराना सामान्य मनुष्य के सीमित साधनों के परे था। अतः आर्थिक दृष्टिकोण से भी यज्ञों का विरोध अनिवार्य था।

इन समस्त सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से उत्पन्न चतुर्दिक असंतोष को ही नवीन धर्मो के प्रचारकों ने प्रकट किया था। बौद्ध साहित्य में अनेक स्थलों पर बुद्ध ने वर्ण–भेद और जाति–भेद की निरर्थकता को प्रतिपादित करते हुए एकमात्र शुद्ध आचार पर बल दिया है।[1] वे स्पष्टतया कहते हैं कि जो कोई जातिववाद में फँसे हैं, गोत्रवाद में फँसे हैं, मानववाद में फँसे, आवाह–विवाह में फँसे हैं, वे अनुपम विद्याचरण सम्पदा से दूर हैं।[2] दूसरे स्थान पर वे आदेश देते हैं कि जाति मत पूँछ, आचरण पूँछ।[3]

बहुदेववाद, वेदवाद, जटिल धार्मिक अनुष्ठान, ब्राह्मणों–पुरोहितो का चारित्रिक पतन, शोषित–दलित जातियों का सामाजिक बहिष्कार, यही वे सामाजिक पीड़ाएँ व असंतोष थे जिनसे त्रस्त होकर जनसाधारण बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट हुआ। जहाँ भेद–भाव न था, मानव मात्र के लिए जगह थी।

नगरीय संस्कृति का उद्भव एवं विकास बुद्ध के जन्म के समय तक हो चुका था। ऐसी संस्कृति का प्रभाव एक साथ कष्टकारक एवं उद्धार करने वाला दोनों तरह का था। प्राचीन सामाजिक धार्मिक व्यवस्था जिसके सिद्धांतों की नींव ब्राह्मण परंपरा के कर्मकांडो पर आधारित थी, वैदिक सभ्यता के पूर्वी क्षेत्रों में अपना प्रभुत्व बनाए रखने में असफल रही। इसके अलावा

नगरीकरण की नई सामाजिक व्यवस्था ने इस वैचारिक शून्यता को और भी बढ़ा दिया था। इसी का परिणाम रहा पूर्णतः नए एवं विस्तृत धार्मिक एवं दार्शनिक चिंतन का उदय। इस प्रकार की आसामान्य परिस्थितियों की विवशताओं ने न केवल इनके नए विश्लेषण खोजे बल्कि नए सामाजिक नियमों के लिए भी पृष्ठभूमि तैयार की। परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में लगे अन्वेषकों का एक विशेष वर्ग बड़ी तेजी से पनपने लगा, जिसने नए प्रश्नों एवं उनके संभावित उत्तरों पर ध्यान केंद्रित कर नई सामाजिक व्यवस्था को ढाँचा प्रदान करने का प्रयास किया।

प्रारंभ में कुछ विद्वानों की मान्यता थी कि बौद्ध धर्म विभिन्न प्रकार की प्राक् बौद्ध काल में उत्पन्न परिस्थितियों के विकास (जैसे याज्ञिक कर्मकाण्डों द्वारा जीव हिंसा, अंधविश्वास तथा बौद्धिक गतिरोध का उत्पत्र होना, लिंग एवं जाति आधारित असमानता आदि) के विरुद्ध एक आंदोलन मात्र था। एस. राधाकृष्णन[4] तथा डी.आर. भण्डारकर जैसे विद्वानों की ऐसी मान्यता है कि बौद्ध धर्म एक ऐसी नैतिक व्यवस्था थी जो वैदिक धर्म में उत्पन्न कुरीतियों को दूर करने का प्रयास कर रही थी।[5] राधाकृष्णन तथा भण्डारकर के विचारों में त्रुटि यह थी कि उन्होंने बौद्ध धर्म के आर्थिक तथा सामाजिक आयामों को अनदेखा कर इसे पूर्णतः वैचारिक आंदोलन के रूप में देखा।[6] जी.सी. पाण्डे[7] तथा जी.एस.पी. मिश्रा[8] ने बौद्ध धर्म के उद्भव को वैदिकोत्तर तथा प्राक्वैदिक श्रमण परंपरा के पुनरुत्थान के रूप में देखा है जो ब्राह्मण धर्म से परे विरक्ति पर आधारित था। उनके विचार में यह परंपरा जिसने संसार निरोध तथा संसार मुक्ति पर जोर दिया, ऋग्वैदिक काल में कार्यषील परम्परा द्वारा दबा दी गई थी। लेकिन श्रमण परंपरा ने स्वयं को पुनर्प्रतिष्ठित किया तथा इसे दुःखी मानवता द्वारा, पाण्डे के अनुसार, तब स्वीकार किया गया जब कार्य तथा पूजा, धन तथा कल्याण, मनुष्य तथा प्रकृति की वैदिक समता कर्कषतापूर्वक तोड़ दी गई।[9] बौद्ध धर्म सबसे अधिक सफल हुआ क्योंकि यह प्राक् वैदिक तथा वैदिकेतर श्रमण परंपरा की अत्यधिक व्यवस्थित तथा सुस्पष्ट अभिव्यक्ति थी। हॉलाकि यह नकारा नहीं जा सकता कि बौद्ध धर्म ने बहुत सी प्राक्–बौद्धकालीन संकल्पनाओं को ग्रहण करने के साथ–साथ इनमें संषोधन किया। परन्तु इस परिकल्पना की कमी यह है कि इसमें बौद्ध धर्म की मौलिकता तथा पूर्णता की ओर ध्यान नहीं दिया गया। जी0 एस0 घुर्ये तथा एन0 दत्त जैसे सामाजिक वैज्ञानिकों ने सुझाव दिया कि बौद्ध धर्म तथा इसके समसामयिक मत ब्राह्मणों के विरुद्ध क्षत्रियों द्वारा सामाजिक वर्चस्व हेतु चलाए गए

संघर्ष का परिणाम थे।[10] उनके अनुसार क्षत्रियों ने अपने महत्व का दावा उस समय करना शुरू किया जब ब्राह्मण याज्ञिक कर्मकाण्डों पर अपने एकमात्र प्रभुत्व द्वारा क्षत्रियों सहित समाज के अन्य वर्णो पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर चुके थे। क्षत्रियों ने ब्राह्मणों के इस मिथ्याभिमान पर प्रहार करने के उद्देश्य से आम जन समूह विशेषकर समाज के विकासोन्मुख संपन्न वर्गों, जैसे प्रभावशाली व्यापारियों, की सहायता चाही। यद्यपि यह नकारा नहीं जा सकता कि क्षत्रियों ने ब्राह्मणों के इस मिथ्याभिमान पर रोश प्रकट किया, परंतु ऐसे रोष को ही बौद्ध धर्म जैसे आंदोलनों के उद्भव की पर्याप्त व्याख्या नहीं माना जा सकता है। यह सत्य है कि बुद्ध न केवल क्षत्रिय कुल में पैदा हुए थे, बल्कि तत्कालीन राजाओं ने भी बौद्ध धर्म को सहायता प्रदान की और बौद्ध धर्म द्वारा वर्ण–व्यवस्था में क्षत्रियों को ब्राह्मणों से ऊँचा स्थान दिया गया। इन दो अनुत्पादक वर्गों में कुछ वैमनस्य जो स्वाभाविक था, अवश्य रहा होगा, परंतु इसे अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता है। अस्तु टी0डब्ल्यू0 राइस डेविड्स[11] की ऐसी धारणा है कि ऋग्वैदिक काल के जड़ात्मवाद ;दपउपेउद्ध ने जो आत्मन् अर्थात व्यक्तिवाद की पद्धति के रूप में विकसित हुआ, ऐसी हर वस्तु पर प्रहार किया जो सामाजिक रूप से कल्याणकारी थी। इसके विपरीत, बौद्व धर्म ने इस प्रक्रिया को उलटने के लिए इस पर प्रहार किया। ए0एन0बोस का सुझाव है कि बौद्ध धर्म प्रोटेस्टेंट धर्म के समान व्यापारियों तथा राजाओं की उभरती धनाढ्यता का तपोत्पादन था।[12] इसी प्रकार रिचर्ड फिक अनुभव करते हैं कि बहुत से राजाओं का नशापान, क्रूरता, दुश्चरित्रता, विश्वासघात, अधार्मिकता आदि तथा पुरोहितों द्वारा राजाओं को अपनी मनमानी करने में सहयोग देने की तत्परता के कारण जनसाधारण की परिस्थितयाँ अत्यंत विषम हो गई होंगी।[13] राहुल सांकृत्यायन का सुझाव है कि बुद्ध ने समसामयिक सामाजिक प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर सौदागरों, राजाओं तथा सूदखोरों के वर्गो के लिए अनुकूल नियम बनाकर उन्हें पुरस्कृत किया।[14] डी0डी0 कोसाम्बी ने कहा कि विभिन्न प्रकार के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिवर्तनों ने समाज को विभिन्न स्तरों पर अव्यवस्थित कर दिया था और विकास की विभिन्न अवस्थाओं में ये भिन्न सामाजिक समूह एक साथ उपस्थित थे।[15] उनके विचार में यद्यपि लोहे का प्रयोग उत्तर वैदिक काल में प्रारम्भ हुआ, फिर भी बलि प्रथा के प्रचलन के परिणामस्वरूप आर्थिक संसाधनों पर काफी दबाव पड़ा और इसने बदले में समाज के दो उच्च वर्गो के हितों को उत्पादक वर्ग के विरुद्ध प्रोत्साहित किया। परिणामतः उत्पादक वर्ग ऐसे नए सामाजिक दर्शन की तलाश कर रहा था जो संस्कृति के

निर्विध्न विकास को सुनिश्चित कर सके। मध्य गंगा घाटी में ब्राह्मणीय धारणाओं एवं संस्थाओं के आगमन के कारण उत्पादक वर्ग ब्राह्मणीय सदाशयता को ग्रहण कर सकता था।[16] देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय[17] ने कोसाम्बी के मत को रूपांतरित करते हुए इस अवधारणा को प्रस्तुत किया कि चूंकि ब्राह्मणवाद के कर्मकाण्ड युक्त स्वभाव की तुलना में उत्तरवैदिक काल में धार्मिक आंदोलनो का दृष्टिकोण अधिक विस्तृत था, अतः वे इससे संतुष्ट नहीं थे। उनके विचार में जनजातीय संस्थाओं ने अंदर से ही विघटित होना प्रारंभ कर दिया था।[18] विजय एवं विस्तार की उग्र वृद्वि में प्रारंभिक राजतंत्रीय राज्य व्यवस्थित रूप से बची स्वतंत्र जनजातियों के अस्तित्व को मिटा रहे थे और जिन क्षेत्रों पर उनका सीधा प्रभुत्व था वहाँ नीच लोभ, निर्मम व्यभिचार, घृणित धनलोलुपता, सार्वजनिक संपति की स्वार्थपूर्ण लूट जैसे नए अवयव उभर रहे थे जिनसे हाल में पीछे छूटी जनजातियाँ अनभिज्ञ थी।[19] दूसरे शब्दों में व्यक्तिगत संपत्ति की उत्पत्ति, जनजातीय एकात्मकता का अंत, निरंकुश राजतंत्र का उद्भव तथा हिंसा, लोभ जैसी असामाजिक प्रवृतियों के विकास और गिरवी, कर, सूदखोरी जैसी संस्थाओं के विकास ने जनसाधारण को भयभीत कर दिया।

इस प्रकार के भयपूर्ण वातावरण में बुद्ध ने ऐसी विचारधारा प्रस्तुत की जो जनसाधारण को मनोवैज्ञानिक शांति पहुँचा सके। बुद्ध इस प्रकार की दशा के कारणों की खोज में न पड़कर लोगों के सांसारिक (भौतिक) दुःख की जगह सार्वभौम दुःख के ज्ञान द्वारा उन्हें आदर्श समाधान दिया।[20] ट्रेवर लिंग के अनुसार इस क्षेत्र में कृषि के विकास ने अत्यधिक सघन आबादी एवं नगरीकरण को जन्म दिया और बदले में नगरीकरण ने सामाजिक स्तर पर व्यक्तिवाद को तथा राजनीतिक स्तर पर निरंकुश राजतंत्र को जन्म दिया। व्यक्तिवाद एवं राजतंत्र के विकास ने व्यक्ति की नैतिक एवं आध्यात्मिक सोच को अस्त–व्यस्त कर डाला। इस दुविधा ने मानवीय परिस्थितियों के प्रति असंतोष पैदा किया और बुद्ध के लिए व्यक्तिगत दुखों की यह बात ही उनके मानवीय दशा के विष्लेषण का आरंभिक बिंदु बनी।[21]

संदर्भ :

1. मज्झिमनिकाय, 2.4.10; 1.4.10; संयुक्तनिकाय, 7.1.9
2. अंबट्ठसुत्त (दीघ नि0 1.3)
3. संयुक्तनिकाय, 7.1.9

4. राधाकृश्णन, एस0, इण्डियन फिलासफी, जिल्द–1, पृ0 352
5. भण्डारकर, डी0आर0, का संदर्भ जी0बी0 उप्रेती द्वारा, दि अर्ली बुद्धिस्ट वर्ल्ड आउटलुक इन हिस्टारिकल पर्सपेक्टिव, दिल्ली, 1977, पृ0 25 पर उद्धृत
6. वही
7. पाण्डे, जी0सी0, स्टडीज इन दि ओरिजिन्स ऑव बुद्धिज्म, पृ0 251–332
8. मिश्रा, जी0एस0पी0, दि एज ऑव विनय, नई दिल्ली 1972
9. पाण्डे, जी0सी0, पूर्वो0, पृ0 62
10. घुर्ये, जी0एस0, कास्ट ऐण्ड रेस इन इण्डिया, पृ0 67 ; दत्त, एन0के0, ओरिजिन ऐण्ड ग्रोथ ऑव कास्ट इन इण्डिया, जिल्द–1, कलकत्ता, 1965
11. राइस डेविड्स, टी0डब्लू0, दि हिस्ट्री ऐण्ड लिट्रेचर ऑव बुद्धिज्म, वाराणसी (पुनर्मुद्रण) 1975, पृ0 26
12. बोस, ए0एन0, दि सोषल ऐण्ड रूरल इकॉनमी ऑव नार्थ ईस्ट इण्डिया, जिल्द–2, पृ0 67
13. फिक, रिचर्ड, सोषल आर्गनाइजेषन इन नार्थ ईस्ट इण्डिया इन बुद्धज टाइम, पृ0 101–102
14. राहुल सांकृत्यायन तथा अन्य, बुद्धिज्म : दि मार्क्सिस्ट अप्रोच, नई दिल्ली 1978
15. कोसाम्बी, डी0डी0, ऐन इंट्रोडक्षन टु दि स्टडी ऑव इण्डियन हिस्ट्री, पृ0 40
16. कोसाम्बी, वही, पृ0 167 तथा आगे
17. चट्टोपाध्याय, डी0पी0, लोकायत, नई दिल्ली, 1978, पृ0 459 तथा आगे
18. चट्टोपाध्याय, वही, पृ0 468
19. चट्टोपाध्याय, वही, पृ0 468
20. चट्टोपाध्याय, वही, पृ0 468
21. ओ0 लिंग, ट्रेवर, दि बुद्ध : बुद्धिस्ट सिविलाइजेषन इन इण्डिया ऐण्ड सीलोन, पृ0 104–117